मीडिया बनाम संस्कृति

डॉ. संध्या गर्ग,

एसोसिएट प्रोफेसर,
जानकी देवी मेमोरियल कालेज, दिल्ली यूनीवर्सिटी

आज का युग सूचना का युग है। मीडिया आज का संजय बन गया है जो धृतराष्ट्र (पाठक, श्रोता, दर्शक) को दूर देश में घटित वह सब प्रस्तुत करता है जो वे स्वयं नहीं देख सकते। जिस प्रकार धृतराष्ट्र संजय पर आश्रित थे, वह जानना चाहते थे कि महाभारत के युद्ध में कहां, क्या घटित हो रहा है? पर स्वयं नेत्रहीन होने के कारण उनके लिए कुछ भी देख पाना संभव नहीं था। संजय अपनी दूरदृष्टि से युद्ध के मैदान की प्रत्येक घटना को देखते और फिर शब्दशः उसका वर्णन कर देते। मीडिया की आज यही भूमिका हो चुकी है। निश्चित रूप से जब हम संसार को जानने के लिए उस पर आश्रित हो चुके हैं तो उसका प्रभाव जनमानस पर होगा ही।

यदि किसी मछली से पूछा जाए कि उसके आस–पास क्या कुछ गीला है तो संभवतः उसका उत्तर होगा नहीं। उसे 'पानी था' का अनुभव तब होगा जब उसे पानी से निकाल लिया जाए। इसी प्रकार मीडिया हमारे जीवन को आज परिचालित कर रहा है, हमें प्रत्यक्ष इसका संज्ञान तभी होगा जब मीडिया अनुपस्थित हो जाए। कल्पना कीजिए टी.वी., रेडियो, इंटरनेट, समाचार–पत्र, सोशल मीडिया कुछ भी नहीं है, तो आप के जीवन में ऐसी रिक्तता आ सकती है जैसे कि आप को किसी टापू पर छोड़ दिया गया हो। अतः मीडिया और समाज एक–दूसरे पर अन्योन्याश्रित संबंध पर चलते हैं, ऐसे में मीडिया और समाज तथा मीडिया और संस्कृति के अंतः संबंधों व प्रभावशीलता पर प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है।

सूचना का प्रसार किसी भी समाज के विकास के लिए आवश्यक है। मीडिया के अभाव में किसी घटना पर लोगों के विचार एक–दूसरे तक संप्रेषित नहीं होंगे तथा समाज के संतुलित विकास में उनका योगदान नगण्य होगा या कहा जा सकता है कि समाज का विकास होगा ही नहीं। मीडिया को 'वाचडॉग्स' कहा गया है, वह समाज, सरकार पर नज़र रखता है। लोकतंत्र में इसीलिए प्रेस को स्वतंत्र घोषित किया गया है। यहीं प्रश्न है कि मीडिया की ज़िम्मेदारी भी इस संदर्भ में बढ़ जाती है कि वह कहाँ, क्या, कैसे संप्रेषित करे, जो सर्वाधिक जन के हक में हो।

लेखन कला के विकास से पूर्व समाज का संप्रेषण मौखिक था इसलिए संप्रेषक और प्राप्तकर्ता निकट होते थे। तब संप्रेषण सांस्कृतिक मिथकीय कहानियों को आधार बना कर किया जाता था ताकि समाज को कहीं अपने लिए कुछ संदेश मिल सके। लेखन के आने पर यह विभाजन हो गया कि जो पढ़ना–लिखना जानते थे वे संदेशों को अधिक अच्छी प्रकार से समझ पाते थे और सूचना पर उनका अधिकार अधिक हो गया। वे ही सांस्कृतिक विकास के सूत्रधार भी हो गए। मुद्रण काल ने संदेशों को अधिक तीव्रता से प्रसारित करना प्रारंभ किया। इस क्रांति ने अपेक्षाकृत एक बड़े सांस्कृतिक प्रसारण का सूत्रपात किया। समाज एक निरंतर विकास, उन्नति के पथ पर अग्रसर हुआ क्योंकि प्रभावित होने व प्रभावित करने की उसकी सांस्कृतिक सीमा की परिधि बढ़ गई थी। वह नई–नई बातें, नई तकनीकें, नई जीवन–शैलियां जानने लगा व उन्हें अपनाने लगा।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को हम सांस्कृतिक परिवर्तन की दिशा में नवीनतम चरण कह सकते हैं। इस युग ने सूचनाओं को अधिक संप्रेष्य कर दिया। सूचना पाना आसान हो गया। विश्व 'ग्लोबल विलेज' हो गया। मौखिक संप्रेषण के युग में जब एक गांव के लोग जानकारी की दृष्टि से निकट संप्रेषण होते थे, ग्लोबल विलेज में पूरा विश्व सूचना संप्रेषण में उतना ही निकट हो गया।

सोशल मीडिया पिछले कुछ वर्षों में पूरे विश्व को अपने अधिकार में ले चुका है। युवा वर्ग विशेष रूप से सामाजिक मेल–मिलाप, मनोरंजन व जानकारी के लिए सोशल मीडिया पर ही आश्रित है। फेसबुक, व्हाट्सएप, यूट्यूब जैसी साइट्स का प्रयोग करने वालों की संख्या रोज़ हजारों की वृद्धि दर पर है। इसमें संदेह नहीं कि ये साइट्स जहां एक ओर सूचना व मनोरंजन के प्रसार का माध्यम हैं वहीं लाखों युवाओं को रोजगार भी जुटाती हैं। भारत भी इस दृष्टि से पीछे नहीं है। देश का युवा वर्ग सोशल मीडिया से अपनी पहचान बना चुका है। ऐसे में सोशल मीडिया के द्वारा देश के युवा वर्ग पर सांस्कृतिक प्रभाव की जांच करना मनोरजंक भी होगा। सोशल मीडिया पर भागीदारी का अर्थ है कि हर कोई लेखक है और हर कोई आलोचक है।

सोशल साइट्स पर लोगों के जुड़ने के मनोवैज्ञानिक कारण की बात की जाए तो यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि लोग उसे जानें, प्रत्येक की इच्छा है कि वह लोगों के संपर्क में रहे। आज के समय जब एकल परिवार का चलन बढ़ता जा रहा है, लोगों के पास सोशल मीडिया एक माध्यम है जहां वह सबसे जुड़ सकते है। उसका एकाकीपन समाप्त होता है। व्यस्तता से भरे जीवन में जब वैयक्तिक रूप से मिलना संभव नहीं है सोशल मीडिया से लोगों से संपर्क करके व्यक्ति का अनुभव होता है कि वह सामाजिक रूप से अकेला नहीं है।

जहां तक संस्कृति का प्रश्न है संस्कृति विचारों व मानवीय स्वभाव को पारिभाषित करने का एक माध्यम है। जहां एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को कुछ संस्कार व भाव धरोहर रूप में देती है, वहीं प्रत्येक व्यक्ति जो जन्म लेता है उसके व्यक्तिगत संस्कार होते हैं। पूरे विश्व में लाखों संस्कृतियां हैं और प्रत्येक की एक विशिष्टता होती है जो दूसरे के पास नहीं है। ऐसे में जब किसी एक संस्कृति का व्यक्ति सोशल मीडिया का प्रयोग करता है तो वास्तव में वह अपनी संस्कृति के प्रसार का दूत होता है। उसके विचार, जानकारी, संदेश उसकी संस्कृति और परिवेश की देन होते हैं। इसमें भी स्त्री–पुरुष अलग–अलग संदेश देते है चाहे वे एक ही संस्कृति की उपज हों। यह तथ्य भी बताता है कि कोई भी देश या संस्कृति हो स्त्री–पुरुष विचार भेद लगभग सभी में दिखाई देता है।

वहीं एक सत्य यह भी है कि मीडिया सामान्यतः तथ्यों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत न करके, कृत्रिम ढंग से परोसता है। धन व ग्लैमर दो पक्ष रहते हैं जो मीडिया की सूचना को प्रभावित करते हैं। अतः वह संस्कृति जो कि मीडिया प्रस्तुत करता है और जो वास्तविक है; दोनों में बहुत अंतर होता है। आज मीडिया जो संस्कृति प्रस्तुत कर रहा है जिसका अनुसरण युवा वर्ग कर रहा है वह काल्पनिक है उसकी जड़ें न होने से वह बरगद वृक्ष न होकर पराश्रित बेल है जो जिस वृक्ष पर फैलती है उसका भी सारा रस सोख लेती है। टी.वी. के सीरियल यदि देखें तो प्रत्येक परिवार राजनीति की चौपाल लगता है। पारिवारिक मूल्य, भाईचारा, सौहार्द्र, आपसी रिश्तों का स्नेह सब केवल षड्यंत्रों की बलि चढ़ गया दिखाई देता है। ऐसे में वह पीढ़ी जो परिवार रूपी संस्था में क़दम रखने जा रही है, किन मूल्यों को अपने साथ ले जाएगी तथा समाज को सुंदर बनाने की कल्पना कैसे सार्थक होगी यह तो भगवान ही जानता है।

बच्चों के बाल–मन पर कोई भी संदेश बहुत शीघ्र अंकित किया जा सकता है क्योंकि वह एक खाली स्लेट जैसा होता है। बच्चे इस मीडिया से जो संदेश ले रहे हैं वह हिंसा और षड्यंत्रों का है। कार्टून चरित्र भी इस प्रकार परोसे जाते हैं कि बच्चे अपने रोल–मॉडल के रूप में उन्हें रख लें, जबकि वे कोई भी नैतिक या सांस्कृतिक मूल्य बच्चों के समक्ष नहीं रखते। अपनी पढ़ाई, खेल, परिवार के साथ बिताए जाने वाल समय को आज बच्चे टी.वी. के सामने बिता रहे हैं जो उन्हें एकाकी बनाता जा रहा है, समाज के भविष्य के लिए यह घातक है।

संस्कृति जहाँ व्यक्ति की जीवनशैली, व्यवहार तथा संचेतना को सींचती है, वहीं टी.वी. और अन्य इलेक्ट्रानिक मीडिया उन्हें अपनी जड़ों से काट रहे हैं। वास्तव में मीडिया का मूल उद्देश्य शिक्षा, मनोरंजन व सूचना था जो कि अब केवल बाज़ार रह गया है। वह बेचना जानता है। वस्तु हो, संबंध हो या मूल्य जो भी बाज़ार में बिक सकता है उसे आकर्षक रूप से पैकिंग करके मीडिया दर्शकों के समक्ष रखता है, चाहे उसकी उपयोगिता कुछ भी न हो और यहां तक कि चाहे वह घातक ही क्यों न हो?

सिनेमा की बात की जाए तो पाश्चात्य मूल्यों को दर्शाता सिनेमा भी भारतीय युवा दर्शक के समक्ष जिस समाज को परोस रहा है वह उसके लिए अनजाना है, उसे आकर्षित करता है पर एक सही सतत् विकास यात्रा का स्थल न होने के कारण उसे भटकाव की ओर ले जाने में भी समर्थ है। समलैंगिकता, लिव–इन, एक्स्ट्रा मैरिटल संबंध भारतीय संस्कृति का अंश नहीं है। ऐसे सांस्कृतिक मूल्यों को ग्रहण करता युवा परिवार और समाज का विरोधी हो जाता है, जो कि उसे समाज से अलग कर रहा है। अपने संस्कारों और विदेशी मूल्यों के बीच की लड़ाई उसके मानस पटल पर निरंतर चलती रहती है। हिंसाप्रधान फिल्मों का एक अलग वर्ग है। बदले की भावना से भरा नायक युवा वर्ग का रोल–मॉडल है। उसकी हिंसा को भी औचित्य पूर्ण ठहराया जाता है जोकि युवाओं को गलत ही संदेश देता है। अहिंसा, सत्य के मूल्यों के देश में औचित्यपूर्ण हिंसा का संदेश देता सिनेमा युवा वर्ग को बहुत क्रांतिकारी तो लगता है पर निश्चित रूप से पतन के मार्ग खोल रहा है।

वास्तव में आवश्यकता है कि मीडिया अपनी जिम्मेदारी को अनुभव करे और विकास तथा सांस्कृतिक मूल्यों के बीच एक संतुलन स्थापित करने का प्रयास करे। अन्यथा जड़हीन संस्कृति को अपनाने की कोशिश करता समाज जब निराश हो कर लौटेगा तो देखेगा कि सांस्कृतिक विरासत का अपना विशाल वृक्ष सूख चुका है और केवल बाजार व उपभोक्तावाद की कड़कती चिलचिलाती धूप है, जिसमें उसके पास जल मरने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रहेगा।

Copyright © 2017 *Dr. Sandhya Garg*. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.